दिल्ली अधीनस्थ सेवा चयन बोर्ड
DSSSB TGT & PGT
ROJGAR WITH ANKIT
Part-B
SCHOLAR BATCH
संस्कृत
इतिहास आदिकाव्य (आदिकवि वाल्मीकि
रामायण (बालकाण्ड-द्वितीय सर्ग)
LIVE
22-08-2024 05:00 PM

रामायण (7 काण्ड)

विवादित

1. बालकाण्ड
2. अयोध्याकाण्ड
3. अरण्यकाण्ड
4. किष्किंधा काण्ड
5. सुंदर काण्ड
6. लंका काण्ड
7. उत्तर काण्ड

द्वितीयः सर्गः

20 - 23

रामायणकाव्यका उपक्रम-तमसाके तटपर क्रौञ्चवधसे संतप्त हुए महर्षि वाल्मीकिके शोकका श्लोक-रूपमें प्रकट होना तथा ब्रह्माजीका उन्हें रामचरित्रमय काव्यके निर्माणका आदेश देना

नारदस्य तु तद् वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिम् ॥ १॥

Sat - 2 PM
Sun - 8 AM

महाभारत

देवर्षि नारदजीके उपर्युक्त वचन सुनकर वाणीविशारद धर्मातगा ऋषि वाल्मीकिजीने अपने शिष्योंसहित उन महामुनिका पूजन किया ॥ १ ॥

यथावत् पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा ।
आपृच्छयेवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥ २ ॥

आकाश मार्ग

वाल्मीकिजीसे यथावत् सम्मानित हो देवर्षि नारदजीने जानेके लिये उनसे आज्ञा माँगी और उनसे अनुमति मिल जानेपर वे आकाशमार्गसे चले गये ॥ २ ॥

स मुहूर्तं गते तस्मिन् देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ ३ ॥

उनके देवलोक पधारनेके दो ही घड़ी बाद वाल्मीकिजी तमसा नदीके तटपर गये, जो गङ्गाजीसे अधिक दूर नहीं था ॥ ३ ॥

सतु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा ।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥ ४ ॥

तमसाके तटपर पहुँचकर वहाँके घाटको कीचड़से रहित देख मुनिने अपने पास खड़े हुए शिष्यसे कहा-॥४॥

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय ।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥ ५ ॥

'भरद्वाज ! देखो, यहाँका घाट बड़ा सुन्दर है। इसमें कीचड़का नाम नहीं है। यहाँका जल वैसा ही स्वच्छ है, जैसा सत्पुरुषका मन होता है ॥ ५ ॥

न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम ।
इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥ ६ ॥

'तात ! यहीं कलश रख दो और मुझे मेरा वल्कल दो। मैं तमसाके इसी उत्तम तीर्थमें स्नान करूंगा' ॥ ६ ॥

एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना।
प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः ॥ ७ ॥

महात्मा वाल्मीकिके ऐसा कहनेपर नियमपरायण शिष्य भरद्वाजने अपने गुरु मुनिवर वाल्मीकिको वल्कल- वस्त्र दिया ॥ ७ ॥

स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः ।

विचचार ह पश्यंस्तत् सर्वतो विपुलं वनम् ॥ ८ ॥

शिष्यके हाथसे वल्कल लेकर वे जितेन्द्रिय मुनि वहाँक विशाल वनकी शोभा देखते हुए सब ओर विचरने लगे ॥ ८ ॥

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम् ।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम् ॥ ९ ॥

उनके पास ही क्रौञ्च पक्षियोंका एक जोड़ा, जो कभी एक-दूसरेसे अलग नहीं होता था, विचर रहा था। वे दोनों पक्षी बड़ी मधुर बोली बोलते थे। भगवान् वाल्मीकिने पक्षियोंके उस जोड़ेको वहाँ देखा ॥ ९ ॥

तस्मात् तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः ।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः ॥ १० ॥

उसी समय पापपूर्ण विचार रखनेवाले एक निषादने, जो समस्त जन्तुओंका अकारण वैरी था, यहाँ आकर पक्षियोंके उस जोड़ेमेंसे एक नर पक्षीको मुनिके देखते- देखते बाणसे मार डाला ॥ १० ॥

तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले ।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराय करुणां गिरम् ॥ ११ ॥

वह पक्षी खूनसे लथपथ होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और पंख फड़फड़ाता हुआ तड़पने लगा। अपने पतिकी हत्या हुई देख उसकी भार्या क्रौंशी करुणाजनक स्वरमें चीत्कार कर उठी ॥ ११ ॥

वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा ।
ताम्रशीर्येण मत्तेन पत्त्रिणा सहितेन वै ॥ १२ ॥

उत्तम पंखोंसे युक्त वह पक्षी सदा अपनी भार्याके साथ-साथ विचरता था। उसके मस्तकका रंग ताँयेके समान लाल था और वह कामसे मतवाला हो गया था। ऐसे पतिसे वियुक्त होकर क्रौञ्ची बड़े दु:खसे रो रही थी ॥ १२ ॥

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम्।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥ १३ ॥

निषादने जिसे मार गिराया था, उस नर पक्षीकी वह दुर्दशा देख उन धर्मात्मा ऋषिको बड़ी दया आयी ॥ १३ ॥

ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः ।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

स्वभावतः करुणाका अनुभव करनेवाले ब्रह्मर्षिने 'यह अधर्म हुआ है' ऐसा निश्चय करके रोती हुई क्रौञ्चीकी ओर देखते हुए निषादसे इस प्रकार कहा- ॥ १४ ॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ १५ ॥

'निषाद ! तुझे नित्य-निरन्तर - कभी भी शान्ति न मिले; क्योंकि तूने इस क्रौसके जोड़ेमेंसे एकको, जो कामसे मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराधके ही हत्या कर डाली' ॥ १५ ॥

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षतः ।

शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥ १६ ॥

ऐसा कहकर जब उन्होंने इसपर विचार किया, तब उनके मनमें यह चिन्ता हुई कि 'अहो ! इस पक्षीके शोकसे पीड़ित होकर मैंने यह क्या कह डाला' ॥ १६ ॥

चिन्तयन् स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्पतिम् ।

शिष्यं चैवाब्रवीद् वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥ १७ ॥

यही सोचते हुए महाज्ञानी और परम बुद्धिमान् मुनिवर वाल्मीकि एक निश्चयपर पहुँच गये और अपने शिष्यसे इस प्रकार बोले - ॥ १७ ॥

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वित: 1

शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ १८ ॥

'तात ! शोकसे पीड़ित हुए मेरे मुखसे जो वाक्य निकल पड़ा है, यह चार चरणोंमें आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरणमें बराबर-बराबर (यानी आठ-आठ) अक्षर हैं तथा इसे वीणाके लयपर गाया भी जा सकता है; अत: मेरा यह वचन श्लोकरूप (अर्थात् श्लोक नामक छन्दमें आबद्ध काव्यरूपछ या यश:स्वरूप) होना चाहिये, अन्यथा नहीं' ॥१८ ॥

शिष्यस्तु तस्य ध्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ।
प्रतिजग्राह संतुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥ १९ ॥

मुनिकी यह उत्तम बात सुनकर उनके शिष्य भरद्वाजको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उनका समर्थन करते हुए कहा- 'हाँ, आपका यह वाक्य श्लोकरूप ही होना चाहिये।' शिष्यके इस कथनसे मुनिको विशेष संतोष हुआ ॥ १९ ॥

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन् यथाविधि ।

तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥ २० ॥

तत्पश्चात् उन्होंने उत्तम तीर्थमें विधिपूर्वक स्नानव किया और उसी विषयका विचार करते हुए वे आश्रमकी ओर लौट पड़े ॥ २० ॥